जनसत्ता

पारदर्शिता का तकाजा

कानून से ऊपर कोई नहीं है। यह टिप्पणी सुप्रीम कोर्ट ने एक ऐसे मामले पर फैसला देते हुए की जिसमें उसके प्रमुख न्यायाधीश के कार्यालय को भी आरटीआइ यानी सूचना के अधिकार कानून के दायरे में लाने की मांग की गई थी। हालांकि यह एक आम व्यवस्था है कि संविधान और कानून की कसौटी पर देश के सभी नागरिक और समूची व्यवस्था को संचालित करने वाला हरेक व्यक्ति बराबर है, भले ही वह कितने भी ऊंचे पद पर या विशिष्ट क्यों न हो, मगर यह भी सच है कि कुछ मामलों में महज धारणा और स्थापित परंपराओं की वजह से किसी व्यक्ति या पद को लेकर रियायत का रुख अपनाया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के कार्यालय को आरटीआइ कानून के दायरे में लाया जाए या नहीं, इसी धारणा की वजह से पिछले कई सालों से ऊहापोह या विचार का विषय बना हुआ था। लेकिन बुधवार को सुप्रीम कोर्ट के पांच सदस्यीय संविधान पीठ ने यह साफ कर दिया कि शीर्ष अदालत के प्रमुख न्यायाधीश का कार्यालय अब सूचनाधिकार कानून के दायरे में आएगा। इससे न सिर्फ जवाबदेही और पारदर्शिता में इजाफा होगा, बल्कि न्यायिक स्वायत्तता भी मजबूत होगी।

गौरतलब है कि जब आरटीआइ कानून लागू हुआ था, तभी उसमें यह स्पष्ट व्यवस्था थी कि 'कुछ अपवादों को छोड़ कर' यह सब पर लागू होता है। यानी कुछ खुफिया और सुरक्षा एजेंसियों के साथ राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित संवेदनशील जानकारियों के अलावा अमूमन सभी मामलों में इस कानून के तहत सूचना देनी ही पड़ेगी। लेकिन न्यायपालिका के मामले में कोई स्पष्ट स्थिति सामने नहीं आ पा रही थी। हालांकि सन 2010 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस मामले में साफतौर पर कहा था कि प्रधान न्यायाधीश का कार्यालय सूचना के अधिकार कानून के दायरे में आता है और न्यायिक स्वतंत्रता किसी न्यायाधीश का विशेषाधिकार नहीं है, बल्कि उन्हें इसकी जिम्मेदारी सौंपी गई है। अब अपने ताजा फैसले में अदालत ने यही कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का कार्यालय एक 'पब्लिक अथॉरिटी' यानी सार्वजनिक उपक्रम है। इसके सभी न्यायाधीश भी आरटीआइ के दायरे में आएंगे। इसके बावजूद इसमें पहले से जारी गोपनीयता बरकरार रहेगी। दरअसल, आरटीआइ की अहमियत जगजाहिर रही है और बीते कई सालों से लगातार इसके जरिए शासन तंत्र में पारदर्शिता कायम करने से लेकर गोपनीयता के नाम पर छिपाई गई कई जानकारियां सामने आती रही हैं। लेकिन ऐसे भी कुछ मामले सामने आए जब सूचना और निजता के सिद्धांत के बीच टकराव की स्थिति बनती दिखी।

पिछले कुछ सालों के दौरान ऐसे सवाल भी उठे कि कुछ मामलों में आरटीआइ को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। शायद इसी के मद्देनजर अदालत ने आगाह किया कि न्यायपालिका के मामले में अगर आरटीआइ के जरिए जानकारी मांगी जाती है तो इसमें कुछ भी गलत नहीं है, लेकिन इसका इस्तेमाल निगरानी रखने के हथियार के रूप में नहीं किया जा सकता और पारदर्शिता के मसले पर विचार करते समय न्यायिक स्वतंत्रता को ध्यान में रखना होगा। न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और स्थानांतरण के मामले में प्रक्रिया संबंधी सूचना देने के सवाल को बहस का विषय माना गया था। लेकिन निजता के दायरे को अगर छोड़ दिया जाए तो न्यायाधीशों के तबादले और पदोन्नति की प्रक्रिया में पारदर्शिता की अपेक्षा की गई थी। शायद यही वजह है कि अदालत ने पारदर्शिता के समांतर निजता के अधिकार को भी एक अहम चीज माना और प्रधान न्यायाधीश के कार्यालय से सूचना देते वक्त उसके संतुलित होने की अपेक्षा पर जोर दिया। अब यह माना जा रहा है कि इस बेहद अहम मसले पर छाई धुंध साफ हो सकेगी।

संकट और चुनौती

एक पखवाड़े के भीतर ही दूसरी बार दिल्ली की हवा फिर उस खतरनाक स्तर पर पहुंच गई है जिसे सबसे ज्यादा जोखिम वाला स्तर मानते हुए दिल्ली में 'जन स्वास्थ्य आपातकाल' लगाया था। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) और पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय की वायु गुणवत्ता निगरानी संस्था- सफर ने वायु प्रदूषण के जो आंकड़े बताए हैं, वे हालात की गंभीरता को बयान करने के लिए काफी हैं। न केवल दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर), बल्कि पड़ोसी राज्यों के शहरों में वातावरण दमघोंटू बना हुआ है। दिल्ली में प्रदूषण से निपटने के लिए प्रदेश और केंद्र सरकार, पर्यावरण मंत्रालय और यहां तक कि सर्वोच्च अदालत तक सक्रिय और गंभीर है, लेकिन हालात बेकाबू होते जा रहे हैं। इसी क्रम में दिल्ली में वाहनों के लिए सम-विषम योजना भी लागू की गई, लेकिन इसका भी कोई असर नहीं पड़ा है। सिर्फ दो दिन ऐसा हुआ जब वायु गुणवत्ता सूचकांक चार सौ के नीचे रहा। लोगों को दम घुटने, सांस लेने में तकलीफ, फेंफड़ों में संक्रमण, आंखों में जलन, सिरदर्द जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है और ऐसे मरीजों की संख्या में पिछले पंद्रह दिन में तेजी से इजाफा हुआ है। सवाल है कि आखिर हम क्यों नहीं प्रदूषण को कम कर पा रहे? क्यों नहीं सरकारी कवायदें कामयाब हो पा रही हैं?

दिल्ली में प्रदूषण से निपटने के लिए इस बार फिर से पांच महीने के लिए ग्रेप यानी ग्रेडेड रिस्पॉन्स एक्शन प्लान को संशोधित करके लागू किया गया है लेकिन फिर भी वायु प्रदूषण बढ़ता जाना चिंता की बात है। जाहिर है, इन उपायों को लागू करने में गंभीरता का अभाव है। ग्रेप पर पूरी सख्ती के साथ अमल करने की जिम्मेदारी परिवहन विभाग, राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, दिल्ली मेट्रो, रेलवे, लोक निर्माण विभाग, दिल्ली पुलिस और राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण और नगर निगमों जैसे महकमों और एजेंसियों की है, पर इन सबके बीच तालमेल की भारी कमी है और हर महकमा अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ते हुए दूसरे पर काम टरकाने की प्रवृत्ति से ग्रस्त है। प्रदूषण से निपटने की योजनाओं में कमी नहीं है, लेकिन इन्हें लागू करना बड़ी चुनौती है। आज भी राजधानी के ज्यादातर इलाकों में कूड़े के ढेर लगे हैं, ढाबों पर कोयले का इस्तेमाल हो रहा है, गुपचुप तरीके से उद्योगों में भट्ठियां चल रही हैं। इन्हें रोकने की जिम्मेदारी आखिर किसकी बनती है? कूड़ा जलाने से रोकना और ऐसा करने वालों पर कार्रवाई करना किसका काम है?

यह तो अब साफ हो चुका है कि दिल्ली में जितना वायु प्रदूषण हो रहा है उसमें पराली के धुएं का योगदान सिर्फ बाईस प्रतिशत है। तब सवाल है कि बाकी अठहत्तर फीसद प्रदूषण के लिए जिम्मेदार कौन है? दिल्ली की सबसे बड़ी समस्या यह है कि लाखों ऐसे डीजल और पेट्रोल वाहन सड़कों पर दौड़ रहे हैं जिनकी निर्धारित अवधि समाप्त हो चुकी है और ये वाहन दिल्ली के प्रदूषण में सबसे बड़ा योगदान करते हैं। लेकिन इन पर लगाम लगाने की दिशा में कोई सख्त कदम नहीं उठा है। सवाल है कि आखिर दिल्ली सरकार का परिवहन विभाग और यातायात पुलिस कर क्या रही है! क्यों नहीं ऐसे वाहनों को सड़क से हटाने का अभियान चलाया जा रहा? दिल्ली को प्रदूषण से बचाने के लिए जितना जरूरी योजनाएं बनाना है, उससे कहीं ज्यादा जरूरत योजनाओं को सख्ती से लागू करने की है।

कल्पमेधा

धन को जेब तक ही सीमित रखें, उसे हृदय में स्थान न दें। जब धन को हृदय में स्थान दिया जाता है तो सुख-शांति के स्थान पर लालच, भेदभाव और बुराइयों का जन्म होता है।
-गुरु नानक देव

अंधविश्वास का दंश

अरविंद कुमार सिंह

कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि पुलिस की मौजूदगी में ही महिलाओं को डायन बता कर उनके साथ बदसलूकी की जाती है। प्रशासन इन घटनाओं को गंभीरता से तब लेता है जब मीडिया या स्वयंसेवी संस्थाएं इस तरह की घटनाओं का खुलासा करती हैं और उन्हें सामने लाती हैं।

यह विडंबना है कि जागरूकता और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के बावजूद हमारा समाज अंधविश्वास के दुष्प्रभाव से मुक्त नहीं हो पा रहा है। समाज में आज भी अंधविश्वास की जड़ें गहरे तक जमी हैं। कुछ समय पहले बिहार में भागलपुर जिले के पीरपैंथी थाना क्षेत्र में एक व्यक्ति ने तांत्रिक के कहने पर अपनी पत्नी की सूनी कोख भरने के लिए अपने ही ग्यारह वर्षीय भतीजे की बलि चढ़ा दी। गौर करें तो अंधविश्वास के कारण बलि चढ़ाने की यह कोई पहली घटना नहीं है। पिछले साल उत्तर प्रदेश राज्य के सीतापुर जिले के कुसेपा दहेली गांव में एक दंपति ने एक तांत्रिक की सलाह पर अपनी ही बच्ची की बलि चढ़ा दी थी। सिर्फ इस आस में कि ऐसा करने से उसकी समस्याएं छू-मंतर हो जाएंगी और वह सुखपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकेगा। इस तरह की घटनाएं आए दिन सुर्खियां बनती रहती हैं। भारतीय समाज में अंधविश्वास इस कदर व्याप्त है कि दो वर्ष पूर्व महिलाओं की चोटी काटने का एक डरावना किस्सा मथुरा और आगरा में खूब चर्चित रहा था। यह तो अच्छा रहा कि दोनों शहरों में जिला प्रशासन ने इन घटनाओं को गंभीरता से लिया और लोगों को आगाह किया कि वे इस तरह की अफवाहों पर ध्यान न दें।

देश में आए दिन इस तरह की अफवाहें जोर पकड़ती रहती हैं और इनकी आड़ में अपराध को अंजाम दिया जाता है। ये घटनाएं रेखांकित करती हैं कि हम विकास के चाहे कितने भी दावे क्यों न कर लें, लेकिन असल में हमारा समाज अभी अंधविश्वास में डूबा हुआ है। सच तो यह है कि अंधविश्वास मिटाने की जितनी पहल हो रही हैं, उतनी ही ताकत से अंधविश्वास की जड़ें और गहरी होती जा रही हैं। अंधविश्वास की आड़ में न केवल बलि देने की कुप्रथा कायम है, बल्कि डायन के नाम पर महिलाओं की नृशंस हत्या भी जारी है। पश्चिम बंगाल के मालदा में एक महिला के डायन होने को लेकर अफवाह फैली और हत्यारी भीड़ ने उसकी दोनों आंखें निकाल कर उसे मौत के घाट उतार दिया था। हत्या से पहले उस महिला के साथ सामूहिक बलात्कार भी किया गया था। पिछले साल ही झारखंड की राजधानी रांची के पास मांडर ब्लॉक के कंजिया मरई टोली गांव की पांच महिलाओं की डायन के शक में हत्या कर दी गई थी। झारखंड के देवघर जिले के पाथरघटिया गांव में पांच महिलाओं को डायन के नाम पर निर्वस्त्र कर घुमाया गया और सिमडेगा जिले के शिकरियातंद गांव में एक अधेड़ महिला को डायन के नाम पर उसके पड़ोसियों ने पीट-पीटकर मार डाला।

ऐसी घटनाएं कमोबेश देश के सभी राज्यों से देखने-सुनने को मिलती रहती हैं। लेकिन दुख की बात यह है कि ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए राज्य सरकारों की ओर से कठोर कदम नहीं उठाए जाते। अंधविश्वास की ऐसी निर्मम घटनाएं उन्हीं राज्यों और क्षेत्रों में देखी जा रही हैं जहां विकास और शिक्षा की लौ पूरी तरह पहुंच नहीं सकी है। अमूमन इन क्षेत्रों में रहने वाले लोग शैक्षिक रूप से तो पिछड़े हैं ही, साथ ही यहां स्वास्थ्य सेवाएं भी नदारद हैं। इसी का परिणाम होता है कि वे अपनी बीमारी और अस्वस्थता के अलावा संतान न होने का मूल कारण समझने के बजाय इसे भूत-प्रेत और डायनों का प्रभाव मानते हैं और फिर डायन की आड़ में महिलाओं की हत्या और नरबलि जैसे कदम उठा लेते हैं। शैक्षिक रूप से पिछड़े और आदिवासी बहुल राज्य झारखंड की ही बात करें तो यहां अंधविश्वास की जड़ें काफी गहरी हैं और उसका सर्वाधिक खमियाजा महिलाओं को भुगतना पड़ रहा है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आंकड़ों पर गौर करें तो यहां पिछले बीस वर्षों में तेरह सौ से अधिक महिलाओं की डायन के नाम पर हत्या हुई है। डायन कुप्रथा पर काम कर रही स्वयंसेवी संस्थाओं की मानें तो गांव वाले ही महिलाओं को डायन के रूप में चिह्नित करते हैं और फिर मौत की नींद सुला देते हैं। अपराधी इसलिए पकड़ में नहीं आते कि इन घटनाओं में पूरा गांव शामिल होता है और अपराधी की पहचान नहीं हो पाती।

आधुनिकता और नई से नई तकनीक से लैस होने के बावजूद हमारा समाज कितना पिछड़ा और अंधविश्वास से ग्रस्त है, इन घटनाओं से आसानी से समझा जा सकता है। कुछ साल पहले देहरादून की एक गैर सरकारी संस्था ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि देश में तकरीबन हर साल दो सौ से अधिक महिलाओं की हत्या डायन के नाम पर होती है। ऐसे निर्दयतापूर्ण कृत्य सिर्फ झारखंड राज्य में नहीं, बल्कि विकसित कहे जाने वाले राज्यों में भी होते हैं। उदाहरण के तौर पर, आंध्रप्रदेश में हर साल तीस से ज्यादा महिलाओं को डायन बता कर मार दिया जाता है।

इस मामले में हरियाणा और ओड़ीशा का रिकार्ड भी कम नहीं है। इन दोनों राज्यों में पच्चीस से तीस और चौबीस से अट्ठाईस महिलाओं की हत्या सिर्फ अंधविश्वास और जादू-टोने के नाम पर की जाती है। पिछले डेढ़ दशक में देश में डायन के नाम पर लगभग ढाई हजार से ज्यादा महिलाओं की हत्या हो चुकी है। जहां एक ओर देश में महिलाएं पंचायतों से लेकर संसद और विधानसभाओं में अहम सहभागी बन रही हैं और नित नई बुलंदियों को चूम रही हैं, वहीं डायन के नाम पर महिलाओं की निर्ममतापूर्वक हत्याओं का सिलसिला शर्म से सिर झुका देता है। समाज के ठेकेदार डायन के नाम पर उन्हें निर्वस्त्र घुमाने के साथ-साथ सामूहिक बलात्कार कर रहे हैं।

इस तरह की घटनाएं कानून और प्रशासन के लिए चिंता की बात होनी चाहिए। कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि पुलिस की मौजूदगी में ही महिलाओं को डायन बता कर उनके साथ बदसलूकी की जाती है। प्रशासन इन घटनाओं को गंभीरता से तब लेता है जब मीडिया या स्वयंसेवी संस्थाएं इस तरह की घटनाओं का खुलासा करती हैं और उन्हें सामने लाती हैं। हालात तब और बदतर हो जाते हैं जब पिछड़े और आदिवासी क्षेत्रों में लगने वाली पंचायतें बैखौफ होकर अपने फैसले सुनाते हुए किसी भी महिला को डायन करार दे देती हैं और समाज का पढ़ा लिखा तबका उनका विरोध करने के बजाए उन्हें अपना मौन समर्थन देता नजर आता है।

इन घटनाओं के पीछे सामाजिक रूढ़िवादिता तो बड़ा कारण है ही, साथ ही कानून के अनुपालन में कमी भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। ऐसी महिलाओं को भी डायन करार देकर मौत के घाट उतारा जा रहा है जिनके परिजन नहीं हैं और उनके पास संपत्ति है। अगर कहा जाए कि डायन की आड़ में संपत्ति हड़पने और नरबलि के पीछे दुश्मनी साधने का खेल चल रहा है, तो यह गलत नहीं होगा। ऐसी स्थिति में समाज में व्याप्त इन कुरीतियों और अंधविश्वासों के खिलाफ जनजागरण चलाने की जरूरत है। साथ ही इन घटनाओं को अंजाम देने वालों की पहचान कर उन्हें दंडित किया जाना चाहिए।

भारतीय जनमानस को समझना होगा कि अंधविश्वासों को खत्म करने की जिम्मेदारी सिर्फ सरकार की नहीं है। इन्हें उखाड़ फेंकने के लिए समाज को भी आगे आना होगा। उन क्षेत्रों की पहचान करनी होगी जहां ऐसी घटनाएं ज्यादा हो रही हैं। उन वजहों को भी तलाशना होगा जिनके कारण इन घटनाओं को प्रोत्साहन मिल रहा है। कम पढ़े-लिखे लोग अक्सर गंभीर बीमारियों से निपटने के लिए अस्पतालों में जाने के बजाए ओझा-तांत्रिकों की शरण लेते हैं और ये तांत्रिक उनके अज्ञान का फायदा उठाते हुए आर्थिक शोषण तो करते ही हैं, उन्हें अपराध करने के लिए भी उकसाते हैं। बेहतर होगा कि सरकार और स्वयंसेवी संस्थाएं पिछड़े और सुविधाहीन क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत करें।

हवा में जहर

सुभाष चंद्र कुशवाहा

पूरे उत्तर भारत में छाई धुंध से दम घुटना अब एक बड़ी समस्या बन चुका है। इसका एक कारण पराली जलाने पर केंद्रित है तो बहुत सारे लोग पटाखों, औद्योगिक धुएं और वाहन प्रदूषण को दोषी बता रहे हैं। सही है कि वायु प्रदूषण में इक्यावन फीसद हिस्सा वाहन प्रदूषण का है, जिनमें डीजल वाहनों का उत्सर्जन ज्यादा नुकसानदायक है। औद्योगिक उत्सर्जन, प्लास्टिक कचरा, पटाखे, लकड़ी या कोयला जलाने से भी हवा प्रदूषित हो रही है, लेकिन वर्तमान धुंध के पीछे पटाखे और पराली जलाना एक कारण तो है।

कोलोराडो विश्वविद्यालय के कोऑपरेटिव इंस्टीट्यूट फॉर रिसर्च इन एनवायरमेंटल साइसेंज के वैज्ञानिकों ने भी माना है कि पराली जैसे बायोमास जलाने से खतरनाक नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक रसायन निकलते हैं। ये रसायन, लकड़ी जलाने की तुलना में हवा को ज्यादा जहरीला बनाते हैं। पुआल या पराली की आग में एसिटोनिट्राइल की सांद्रता, लकड़ी की आग की तुलना में दस गुना अधिक होती है और यह हवा में लंबे समय तक बनी रहती है।

किसानों द्वारा खेतों में पराली जलाने के कृत्य को विगत वर्ष राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण यानी एनजीटी ने गंभीरता से लिया था और इस कृत्य को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मानते हुए पर्यावरण शुल्क वसूलने का आदेश दिया था। दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में तो पंद्रह हजार रुपए जुर्माना लगाने का भी प्रावधान किया था, मगर इससे स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ा। इस साल धुंध और बढ़ गई। स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य पर खतरे को देखते हुए छुट्टी भी घोषित कर दी गई थी। जाहिर है कि यह समस्या जुर्माने से हल नहीं हो सकती।

दुनिया मेरे आगे

पराली या फसलों के डंठलों को जलाने की समस्या दरअसल खेती-किसानी से पशुओं की छुट्टी का परिणाम है। अब खेती-किसानी की संरचना बदल चुकी है। मशीनों के प्रयोग ने पशुओं को बेदखल कर दिया है। चारे की आवश्यकता समाप्त हो गई है। मशीनों से फसलों की कटाई के बाद डंठलों को खेतों में छोड़ दिया जा रहा है। पराली को खेत से अलग करने के लिए मजदूरों का अभाव है और यह एक खर्चीला काम है। किसानों की हालत पहले से ही खराब है और वे खेतों से पराली अलग करने का खर्चीला काम नहीं कर पा रहे। जला कर मुक्ति पाना ही एक विकल्प है। इसमें कोई दो राय नहीं कि डंठलों को जलाना स्वास्थ्य और जैविक दृष्टि से हानिकारक है। पर्यावरण के साथ-साथ इससे जमीन की उर्वरा शक्ति भी प्रभावित होती है। खेती-किसानी में सहायक छोटे-छोटे जीव मारे जाते हैं। उन जीवों पर निर्भर रहने वाली चिड़ियां मारी जाती हैं।

यह समस्या अकारण और एकाएक नहीं पैदा हुई है और न इसके लिए सिर्फ किसान दोषी हैं। दरअसल, यह हमारी गलत कृषि नीतियों का परिणाम है जो पर्यावरण का ध्यान रखे बिना, मुनाफे के गणित पर तैयार की गई हैं। हमने मशीनों और जानवरों के बीच के सामंजस्य को भंग कर दिया है। हमारे कृषिकरण में मनुष्य और मशीनों के साथ-साथ पशुओं की भूमिका भी तय होनी चाहिए थी। मशीनों के इस्तेमाल के साथ-साथ खेतों में उसके द्वारा छोड़े गए अवशेषों के निस्तारण पर विचार किया जाना चाहिए था।

हमें इस तथ्य को याद करना चाहिए कि एक दशक पूर्व तक पुआल जलाने की नौबत नहीं आती थी। किसान पुआल की पूंज लगा कर हिफाजत करते थे। पुआल की बिक्री होती थी। यही स्थिति गेहूं के भूसे की भी थी। खेती-किसानी की पूरी संरचना पशुओं पर निर्भर होने के कारण पुआल की खपत इतनी थी कि किसान पुआल को चारे के रूप में इस्तेमाल करने के बाद जो बचता था, उसे बेच कर कुछ कमा लेते थे। कागज बनाने में भी पुआल या भूसे का इस्तेमाल होता था और गांव-गांव में भूसा खरीदने वाले ट्रक दिखाई देते थे। सच यह है कि फसल अवशेषों के व्यावसायिक उपयोग को नकार कर आधुनिक मशीनों से खेती-किसानी की जो तरकीब निकाली गई, उसने इस समस्या को जन्म दिया है।

हमने पराली के उपयोग का विकल्प तैयार नहीं किया है। अगर रोटावेटर जैसी मशीनों को हर ग्राम सभा में उपलब्ध करा कर पराली को बारीक कतर कर जमीन में मिलाने की सुविधा उपलब्ध कराई गई होती तो प्रशिक्षित किसान पराली को सड़ा कर जैविक खाद बना सकते थे।

हमें कागज और कार्ड बोर्ड बनाने में पराली और भूसे का उपयोग बढ़ाना चाहिए और पराली की खरीद की योजना लानी चाहिए। चूंकि अवशेष डंठलों से भी लाभ कमाया जा सकता है, यह ध्यान में आने के बाद किसान जलाने का विकल्प छोड़ देंगे। कंबाइन की कार्य प्रणाली में भी बदलाव किया जाना चाहिए, जिससे धान निकालने के बाद उसी मशीन से डंठलों को भी खेतों से निकालने का काम हो। डंठलों से खाद निर्माण के लिए योजनाएं चला कर उनकी उपयोगिता बढ़ाई जा सकती थी। देखा जाए तो यह मसला न तो प्रतिबंधों से हल हो सकता है और न सख्त कानून से, पराली को उपयोगी बना कर और किसानों के बीच जागरूकता फैला कर ही इस समस्या से निपटा जा सकता है।

प्रदूषण की राजधानी

हवाओं का यह स्वभाव होता है कि वे जिन क्षेत्रों से होकर गुजरती हैं, वहां के वायु मंडल में उपलब्ध सुगंध-दुर्गंध, धुएं और धूल के कण, विषैली गैसों आदि को साथ लेकर बहती रहती हैं। जिस प्रकार पहाड़ों से आने वाली हवाएं सर्द और नदी के ऊपर से बहती हवाएं भीगी यानी नम होती हैं, ठीक उसी प्रकार दिल्ली जैसे प्रदूषण के शिकार शहरों में आने वाली हवाएं उनके पास-पड़ोस के क्षेत्रों में जलाई जा रही धान की परालियों से उठते धुएं के कारण विषाक्त हो गई हैं। सचमुच, सत्संग और कुसंग का प्रभाव चरितार्थ होता दीख रहा है।

दिल्ली को देश की नाक कहा जाता है। यहां के सौंदर्यीकरण और स्वच्छता पर हो रहा खर्च देश के सभी राज्यों में हो रहे खर्च से अधिक है, फिर भी दिल्ली अब पर्यावरण-प्रदूषण के चलते भयावह हो गई है। कुछ दिन ही हुए जब दिल्ली के मुख्यमंत्री ने जनता को अपने घरों की खिड़कियां न खोलने, सुबह सैर पर न निकलने की सलाह दी थी। सहज ही प्रश्न उठता है, आखिर कब तक लोग इस तरह बिल में रहने वाले जंतुओं की सी जिंदगी बसर करेंगे और कब तक स्वास्थ्य के लिए अत्यावश्यक सुबह की सैर पर नहीं जाएंगे? यह तो पर्यावरण प्रदूषण से बचने का स्थायी उपाय नहीं प्रतीत होता क्योंकि दिल्ली में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपनी रोजी-रोटी के लिए दिल्ली की सड़कों पर पैदल या साइकिल से चलते हैं। वे कैसे घर में बैठे रह सकते हैं?

ऐसा नहीं है कि पर्यावरण-प्रदूषण की शिकार केवल दिल्ली है। मैं कुछ दिनों के लिए वाराणसी गया हुआ था। वहां के पर्यावरण की स्थिति दिल्ली से बहुत बेहतर नहीं है। कहने के लिए बनारस प्रधानमंत्री का चुनाव क्षेत्र है, पर बड़े पैमाने पर वहां सड़क और पुल निर्माण कार्यों के चलते उड़ती धूल और गाड़ियों से निकलते धुएं के कारण सड़कों पर चलना दूभर है। वहां की स्थिति किसी भी तरह दिल्ली की स्थिति से अच्छी नहीं थी।

पर्यावरण प्रदूषण के लिए किसानों द्वारा जलाई जा रही पराली को ही दोष देना किसानों के साथ अन्याय है। हालांकि कुल प्रदूषण में उसका योगदान चौसठ प्रतिशत है, जिसे देखकर ही शायद उच्चतम न्यायालय ने किसानों को प्रति एकड़ सौ रुपए के हिसाब से भुगतान करने के लिए सरकार को आदेश दिया, जिससे कि वे पराली जलाने का विकल्प अपना सकें। शहरों में तीव्र गति से फैल रहे प्रदूषण को रोकने के लिए उनमें चलने वाले गाड़ी के गैरेज, निर्माण कार्यों, सड़क के किनारे लगने वाले बाजारों पर भी नियंत्रण रखने की सोचनी चाहिए। यत्र-तत्र चौराहों पर होने वाले यातायात जाम भी प्रदूषण में कम योगदान नहीं देते, यह ध्यान देने की बात है।

● *राजेंद्र प्रसाद सिंह, पश्चिमी विनोद नगर, दिल्ली*

नीचे की ओर

सकल घरेलू उत्पाद की दर लगातार नीचे की ओर लुढ़क रही है। लोग बढ़ती महंगाई से परेशान हैं। रोजमर्रा के उपयोग की वस्तुओं के दाम आसमान छू रहे हैं। युवा बेरोजगार हो रहे हैं, मंदी के बादल छाने लगे हैं। कोई पूछने वाला नहीं है कि सकल घरेलू उत्पाद दर दिन-ब-दिन क्यों नीचे गिर रही है? जिस देश में फसलों का उचित मूल्य न मिल पाता हो उसके किसान को दस खरब की अर्थव्यवस्था से भला क्या मतलब; उन नौजवानों के लिए भला क्या मतलब जिन्हें अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए काम न मिल पाता हो? जब लोग बाजार में आलू-प्याज-सब्जी खरीदने निकलते हैं तो मानो कोई जंग लड़ने निकलते हैं। लेकिन सरकार उनकी समस्याओं को हल करने के लिए कोई कदम उठाती नहीं दिख रही है।

● *दिनेश चौधरी, सुरजापुर, सुपौल, बिहार*

बदहाल बचपन

जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, 'आज के बच्चे कल के भारत का निर्माण करेंगे। हम जिस तरह बच्चों की परवरिश करते हैं उससे भारत का भविष्य तय होता है।' वे बच्चों से बहुत लगाव रखते थे, तभी तो उनके जन्मदिन चौदह नवंबर को बाल दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है।

इस दिन स्कूलों में विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, बच्चों के कल्याण की बड़ी-बड़ी बातें कही जाती हैं लेकिन कड़वी हकीकत है कि आज भी भारत में छोटे-छोटे बच्चे गरीबी के कारण मजदूरी करने को विवश हैं। बच्चों के कुपोषण के मामले में भी भारत की स्थिति कोई खास अच्छी नहीं है। गरीब भी अपने बच्चों के सुनहरे भविष्य के सपने देखते है, लेकिन गरीबी के कारण वे सपने चकनाचूर हो जाते हैं। क्या आज कोई है ऐसे बच्चों के दुख-दर्द को समझने वाला?

दरअसल, बाल दिवस मनाने का औचित्य तभी होगा जब गरीब से गरीब बच्चा भी अपनी पढ़ाई की उम्र में किसी काम पर या थैला उठा कर कूड़े के ढेर के पास नहीं जाएगा, बल्कि किताबों से भरा बैग लेकर स्कूल जाने लगेगा, देश में से बाल मजदूरी का कलंक शत प्रतिशत मिटेगा और हर गरीब बच्चे को भरपेट भोजन मिलेगा।

● *राजेश कुमार चौहान, जालंधर*

रेटिंग के बावजूद

वैश्विक रेटिंग एजेंसी मूडीज ने भारत की साख यानी क्रेडिट रेटिंग आउटलुक नकारात्मक कर दिया है, हालांकि उसने विदेशी मुद्रा रेटिंग 'बीएए2' को बरकरार रखा है। अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों की रेटिंग की माया या तो वे खुद जानती हैं या शायद ईश्वर। 2010 में एक अन्य रेटिंग एजेंसी स्टैंडर्स एंड पुअर (एसएंडपी) ने आइसलैंड को सर्वश्रेष्ठ रेटिंग 'एएए' दी थी मगर इसके अगले साल ही उसकी अर्थव्यवस्था एकदम बैठ गई। उसके तीनों प्रमुख बैंक फेल हो गए। उसकी मुद्रा क्रोनर डूब गई। उसका विदेशी ऋण जीडीपी का सात गुना तक पहुंच गया। आइसलैंड में पैसा लगाने वाले करोड़ों निवेशकों को एसएंडपी ने मारक चोट पहुंचाई। पूरी दुनिया ने एसएंडपी को लानत भेजी।

लिहाजा, भारत को मूडीज की रेटिंग या आउटलुक की परवाह नहीं करनी चाहिए। हमारी अर्थव्यवस्था अपनी मूलभूत मजबूती के कारण फिर गति पकड़ने लगी है। मूडीज भारत का कुछ बिगाड़ नहीं सकती, हां अपनी विश्वसनीयता जरूर दांव पर लगा सकती है। भारत में विदेशी निवेश की रफ्तार को रोकने में यह रेटिंग कामयाब नहीं हो सकती, वह करीब नौ फीसद की समान दर से बढ़ रहा है। यह विश्व में सर्वाधिक है।

● *आस्था गर्ग, बागपत रोड, मेरठ, उत्तर प्रदेश*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली